International Journal of Applied Research 2023; 9(11): 166-170

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2023; 9(11): 166-170
www.allresearchjournal.com
Received: 07-09-2023
Accepted: 11-10-2023

डॉ. विमलेन्दु कुमार विमल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
एस0एम0आर0सी0के0
महाविद्यालय, समस्तीपुर,
सिरदिलपुर, पो0–पटोरी,
समस्तीपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विमलेन्दु कुमार विमल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
एस0एम0आर0सी0के0
महाविद्यालय, समस्तीपुर,
सिरदिलपुर, पो0–पटोरी,
समस्तीपुर, बिहार, भारत

प्रेम की अवधारणा

डॉ. विमलेन्दु कुमार विमल

सारांश
प्रेम वरदान की तरह है। सच्चा प्रेमी वह है, जो प्रेम को देय समझे न कि इसे पाने का पर्याय मान बैठे! प्रेम जैसा भी हो, अकारण नहीं होता, उसके पीछे पूर्व जन्म के कर्म विद्यमान रहते हैं।
प्रेम की सेज पर वासना का भोग ही मनुष्य को उपासना की ओर उन्मुख करता है, जो काम को राम तक ले जाता है।
प्रेम का धरातल भौतिकता है–अलौकिकता नहीं! नर–नारी के ऐंद्रिक सुख के 'चरमक्षणों' की परिणति अतींद्रिय सत्ता की उपलब्धि नहीं हो पाती।
वासना शाषवत ऊर्जा है। इसी वासना के कारण हम प्रेम करते हैं प्रेम का बीज स्वतः अंकुरित होता है। वह हमेषा मौन रहता है। उसे मुखरता देती है–वासना, जो स्वयं में 'चरैवेति' का संदेश है।
कामवासना को उत्कर्ष तक ले जाने वाला बस एक मात्र प्रेम है। मानव–प्रेम में प्रेम का अवतरण मानव–मन का आध्यात्मिक आरोहण ही है। यह उदात्त प्रेम वासनाजनित प्रेम की ही निष्पत्ति है।

कूटशब्द : प्रेम वरदान, चरमक्षणों, प्रेम की अवधारणा, प्रियेषु सौभाग्यफला

प्रस्तावना
दुनिया का ऐसा कोई भी शाास्त्र नहीं है, जिसमें प्रेम की एक परिभाषा दी गयी हो। यही कारण है कि दुनिया में जितने लोग हैं, उतनी ही परिभाषा प्रेम की है। तभी तो प्रेम वरदान की तरह है। सच्चा प्रेमी वह है, जो प्रेम को देय समझे न कि इसे पाने का पर्याय मान बैठे! डोरोथी ने लिखा है, ''प्रेम हथेली पर रखे पारे की तरह है, मुट्ठी खुली होने पर वह रहता है और मीचने पर निकल जाता है।'' प्रेम में सौंदर्य की अहम् भूमिका होती है। तभी तो सौन्दर्य की परिणति प्रेम में होती है। महाकवि कालिदास ने स्पष्ट किया है कि 'प्रियेषु सौभाग्यफला ही चारूता।' यह प्रेम जैसा भी हो, अकारण नहीं होता, उसके पीछे पूर्व जन्म के कर्म विद्यमान रहते हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं –

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्तिते।।

–श्रीमद्भगवद्गीता–10.10

प्रेम की अनिवार्यता कवीन्द्र रवीन्द्र को भी थी–जैसे और जिस मात्रा में सबको है। वे कहते हैं–

भालो बेसे सखी, निभृते यतने आमार नामहि लिखो
तोमार मन मंदिरे
आभार पराने जे साज बासिछे ताहार तालहि
शाखो तोमार चरण मंजीरे।
इस प्रेम पराकष्ठा में कवीन्द्र कहते हैं –
'अगुनेर परशमणि छोंआओ प्राणे
ऐ जीवन दुग्ध करो दहन–दागे।'

प्रेम की यही परिणति है, जहाँ प्रेमी सब कुछ समर्पित करे। वह प्रेम का ही वशीकरण प्रभाव था, जो वंशी के माध्यम से फूटकर, मन के तलातल को फाड़कर दिग्दिगंत को बेसुध कर रहा था। 'वोल्गा से गंगा' में राहुल सांकृत्यायन ने उस विशुद्ध स्थिति को इस तरह चित्रित किया है कि पाठक भी अपनी बेखुदी में स्वतः आ जाता है–

पुरूहूत के हाथ से वंशी छूटकर हरी घास पर गिर पड़ी है, जो वह उसे उठाकर उस तरह पुचकारता–चुमकारता है, जिस तरह किसी शिशु को उसकी माँ इलराती–दुलराती है। ऐसा करते क्षण रोचना ने पूछा–

पुरूहूत! तू वंशी बजाता है?
मेरा प्राण इसी वंशी में बजता है।
मुझे वशी सुना पुरूहूत!

''अभी या खाने के बाद?'' पुरूहूत पूछता है। उसे सुनने की उत्कंठा–अभिलाषा, जो प्रेम की प्रारंभिक मनोदशा में स्वतः ही उत्पन्न होती है, वह अधीर बाला बोलती है–''जरा–सा अभी''।
''अच्छा'' – कह पुरूहित ने वंशी को ओठ में लगा जब आठों उगलियाँ उसके छिद्रों पर मोरना शषुरू किया, तो विशाल वृक्षों की छाया से निकलकर पैर फैलाते संध्या अंधकार की स्तब्धता में दिगंत को प्रतिघ्वनित करनेवाली उस मधुर ध्वनि ने चारों ओर जादू–सा फैला दिया। तन्मयता में रोचना सुधबुध खो चुकी थी। लगता था उर्वशी के वियोग में व्याकुल पुरूरवा के व्यथित–से मन को ही पुरूहित गा रहा हो।
रोचना द्वारा वंशी की प्रशंसा सुन, पुरूहित कहता है–''वंशी के ओठों में लगाते ही मैं सब कुछ भूल जाता हूँ। यह वंशी मेरे पास रहे, फिर मुझे दुनिया में किसी चीज की चाह नहीं रह जाती।'' रोचना के उठाने पर पुरूहूत अपने को रोक न सका और बोला–''मेरा मन तेरा मुख चूमने को करता है।''

''और मेरा भी पुरू...।''

यह भी एक परिणति ही है और प्रेम की ही परिणति है। समवयस्कों का चुंबन चाहे कितना भी परिष्कृत हो, एक सिहरन तो पैदा करता ही है, जो सभी इंद्रियों को तत्काल जागृत करने वाली कहलाती है। प्रेम की सेज पर वासना का भोग ही मनुष्य को उपासना की ओर उन्मुख करता है, जो काम को राम तक ले जाता है। तभी तो सनातन प्रेम को भारतीय दर्शन में अध्यात्म कहा जाता है। सनातन प्रेम को ही हमारे धर्मग्रन्थों में 'काम' की भी संज्ञा दी गयी है। इस काम की गणना जीवन के पुरूषार्थ चतुष्टय में की गई है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है–

धर्माविद्धा भूतेषु कामोऽस्मि भरतवर्षभ। 1

श्रीमद्भगवद्गीता–7.11

धर्म, अर्थ और मोक्ष का जीवन में जो महत्त्व होता है, वही महत्त्व काम का भी है।
यही वह लघु बीज है, जिसका वटवृक्ष में रूपांतरण होता है, जो आग तृणों को भस्म बना देती है, वही आग सोने में कुन्दन की आभा उत्पन्न कर देती है।
चूँकि मानव जीवन एक द्वन्द्व है, इसलिए द्वंद्विल जीवन को किसी भी साधन के द्वारा समाहृति तक नहीं ले जाया जा सकता है।
तब यह क्यों न माना जाए कि प्रेम का धरातल भौतिकता है–अलौकिकता नहीं! नर–नारी के ऐंद्रिक सुख के 'चरमक्षणों' की परिणति अतींद्रिय सत्ता की उपलब्धि नहीं हो पाती।
ऋग्वेद में लिखा है–''कम्नम् इति कामः।'' यानी जो कामना करना सिखाए, वही काम है, वही वासना है। लक्ष्य–प्राप्ति के बाद भी वासना नहीं मरती। वासना स्वयं में आदि है, मध्य है और अंत भी है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है–

'मिलन अंत है मधुर प्रेम का और विरह जीवन है।
विरह प्रेम की जागृत गति है और सुसुप्ति मिलन है।।' 2

वासना शाषवत ऊर्जा है। इसी वासना के कारण हम प्रेम करते हैं किससे! सहयोग के लिए, प्राप्ति के लिए, तृप्ति के लिए। यह ऊर्जा का ही तो धर्म है। यदि दुनिया में सबके हमशक्ल होते, तो क्या होता? तो कुछ नहीं होता, क्योंकि ऋणात्मकता के बिना धनात्मकता नहीं मिलती। विपरीतता के अभाव में सुख का चरम अधूरी यात्रा का माइलस्टोन मात्र रह जाता। विपरीत में द्वंद्व है। द्वंद्व में संघर्षजनित शक्ति। वही ऊर्जा, जो वासना से फलित होती है, आधार पाती है। किसी भी अन्वेषण का मौलिक उत्स वासना है–प्रकृति की तरह परिवर्तनशील प्रकृति, जो कभी बासी फूलों से श्रृंगार नहीं करती। वह वासना ही है। प्रेम का बीज स्वतः अंकुरित होता है। वह हमेशा मौन रहता है। उसे मुखरता देती है–वासना, जो स्वयं में 'चरैवेति' का संदेश है। सौंदर्य है, चेतना है, साधना है, जो पशु–श्रेणी से ऊपर उठाकर मानव जो परम पद प्रदान करती–कराती है–राजा को सम्राट और रंक को राजा बनाती है। वासना सृष्टि भी है, स्रष्टा भी है, दृष्टि भी है और द्रष्टा भी है।
परमात्मा न स्त्री है, न पुरूष। वह है–अर्धनारीशवर। दोनों मिलकर पूर्ण होते हैं। काम की इस अद्वैत दृष्टि से वासना बलवती होती है। कामवासना को उत्कर्ष तक ले जाने वाला बस एक मात्र प्रेम है। मानव–प्रेम में प्रेम का अवतरण मानव–मन का आध्यात्मिक आरोहण ही है। यह उदात्त प्रेम वासनाजनित प्रेम की ही निष्पत्ति है।
आचार्य वात्स्यायन ने 'कामसूत्रम्' में प्रधान पुरूषार्थ के रूप में काम का ही प्रतिपादन किया है। आरम्भ में आचार्य ने 'धर्मार्थ कामेभ्यो नमः' कहा है। आचार्यानुसार काम की परिभाषा है–

श्रोत्रत्वक चक्षुर्जिह्वा घ्राणा नामात्संयुक्तेन
मनसाधिष्ठातानां स्वेषु विषयेष्वानु कूल्यतः प्रवृत्तिः कामः।।

अर्थात् आत्मा से संयुक्त मन से अधिष्ठित श्रोत, त्वक्, चक्षु जिह्वा और घ्राण इंद्रियों के अपने–अपने विषय में अनुकूल रूप से प्रवृत्त होने को काम कहते हैं। आचार्य ने इसके प्रधान रूप के बारे में लिखा है–

स्पर्श विषोषविषयावस्यामामि सुखानुविक्ष
फलवत्यर्थ प्रतीतिः प्राधान्यात्कामः।

अर्थात् स्त्री–पुरूष के संयोग से अपूर्व स्पर्श प्रतीत होता है और आनंदानूभूति होती है – यही प्रधान काम है। यह काम तन–मन के स्तर पर स्त्री–पुरूष को जोड़ता है। यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर विकसित होता है। प्रेम ही अनन्य रूप से भक्ति बन जाती है। गोपियों की प्रेम लक्षणा भक्ति ऐसी ही थीं।काम से प्रेम और प्रेम से भक्ति का इस प्रकार स्वतः विकास होता रहता है।
विद्यापति के राधा–कृष्ण से संबद्ध पदों में सौंदर्य अनुस्यूत काम ही प्रेम में परिणत होता है। सूरदास तो प्रेम के महाकवि ठहरे। सम्पूर्ण संस्कृत–हिन्दी साहित्य में सूर का प्रेम काव्य विशिष्ट है, क्योंकि प्रथम प्रेम दर्शान का काव्य है। रावण की काम–वासना के बंदी–गृह से सीता को बचाने के लिए काम को युद्ध करना पड़ता है। प्रिया–मुक्ति के लिए युद्ध–वर्णन निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में देखने योग्य है।
प्रसाद ने 'कामायनी' में काम, वासना और प्रेममय जीवन का सर्वश्रेष्ठ चित्रण किया है। महाकवि ने काम को मूल शक्ति माना है, जिससे अणु–परमाणु सक्रिय होते हैं। चराचर में सृष्टि–चेतना जागती है–

'वह मूलशाक्ति उठ खड़ी हुई
अपने आलस का त्याग किए,
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े

जिसका सुंदर अनुराग लिए।' 3

इसी काम–वासना के कारण दोनों (मनु–श्रद्धा) निकट आए, पर मनु प्रणय–परिणय के बाद भी वासनाक्रांत रहे। फलतः इड़ा के साथ बलात्कार का प्रयास कर बैठे। अतः विद्रोह उमड़ उठा। काम–वासना प्रेम में परिणत न होकर ही क्षोभ में प्रकट होती है। दिनकर ने 'उर्वशी' में काम–वासनात्मक रूप का चित्रण किया। बाद मे वह शारीरिक सुख, क्रमशः मानसिक और आत्मिक होता जाता है। काम–वासना ही प्रेम की आधार–भूमि है। 'उर्वशी' में पुरूरवा से उर्वशी कहती है–

'पढ़ो रक्त की भाषा को, विशवास करो इस लिपि का।'

लेकिन पुरूरवा की नजर में विषुद्ध प्रेम उदात्तता के शिखर की ओर बढ़ने का एक विकल्प मात्र है–'दाह मात्र ही नहीं, प्रेम होता है अमृत शिखा भी।'
प्रेम के रोमानी दृष्टिकोण को लेकर प्रेमी आलम्बन को छूना नहीं चाहते हैं, उसे केवल जी भर देखना चाहते हैं। यह भी सत्य है कि रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है। तभी तो 'दिनकर' ने लिखा है–

'दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।' 4

काम, प्रेम और भक्ति ये सब जीवन के विकास क्रम हैं, क्योंकि यह संपूर्ण सृष्टि सदाशिव के अर्धनारीशवर रूप से ही उत्पन्न हुई है। पार्वती पहाड़ी (उच्च) रूप (सौन्दर्य) हैं और शांकर सृष्टि का अनादिक स्रोत। तभी तो, द्वारिका राय 'सुबोध' ने कहा है–
'पहाड़ी रूप पर होता निछावर है सभी का मन।

अनादिक स्रोत है निःसृत जहाँ से है हुआ जीवन।।' 5

वासना प्रेम का जब उदात्तीकरण होता है, तब उसकी परिणति काम–प्रेम में होती है। लौकिकता की अट्टालिका खड़ी की जा सकती है, क्योंकि लौकिक प्रेम (वासना प्रेम) को समझे बिना अलौकिक प्रेम (काम–प्रेम) को समझना असंभव है। जिस प्रकार साधना की चरम स्थिति में साधक एवं साध्य और भक्ति की चरम स्थिति में भक्त और भगवान एक हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रेम की चरम स्थिति में प्रेमिका और प्रेमी एक हो जाते हैं। प्रेम का आकर्षण रूप–सौंदर्य है और उसकी उपलब्धि के साधन आराधना, साधना, तपस्या और उपासना ही हैं, जैसा कि एक कवि ने कहा है–

'रूप की आराधना करता
मैं तुम्हारी साधना करता,
यह तपस्या पूर्ण होगी कब?
सुदर्शने! उपासना करता।'

तभी तो 'अज्ञेय' ने प्रेम–सौंदर्य रूपी आकर्षण के क्रम में नारी को ही प्रेम की पुंजिका कहा है–

'तुम्हारी देह
मुझको कनक–चंपे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गंध देती है।' 6

यही कारण है कि 'दिनकर' जी ने लिखा है–

'रूपसी नारी प्रकृति का चित्र है सबसे मनोहर।'

प्रकारांतर से, कामवासना उपासना के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। जीवन सच्चिदानन्दमय हो जाता है, जिस अवस्था का वर्णन प्रसाद ने 'कामायनी' की अंतिम पंक्तियों में किया है–

'समरस थे जड़ या चेतन सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।'

तात्पर्य यह है कि काम–वासना का उत्सर्ग ही समरसता का नियामक होता है, क्योंकि संयोग–प्रणय की सिद्धावस्था होती है। प्रेम एकरस होता है, अत्यन्त सूक्ष्म होता है और केवल अनुभवगम्य होता है। 'नारद भक्तिसूत्र' में कहा भी गया है – ''गुणरहितं कामनारहितं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्।'' प्रेम त्याग–प्रधान होता है और मोह वासना–प्रधान, प्रेम चिरस्थायी होता है और मोह क्षणिक। संसार में वासना रहित प्रेम को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। कविवर द्वारिका राय 'सुबोध' ने लिखा है– ''मैं प्रेम को अनासक्त योग मानता हूँ, क्योंकि आसक्ति की नींव पर निर्मित प्रेम – भवन बालू की भीत–सा धराशायी हो जाता है।'' तभी तो प्रेम की चाल टेढ़ी होती है। कविवर आरसीप्रसाद सिंह ने लिखा है–

'प्रेम एक स्वर्गीय सुमन है, जो खिलता है।
नन्दन वन में प्रेम नहीं जग में मिलता है।।'

लोग भ्रमवश रूपासक्ति, देहासक्ति या वासना को प्रेम समझ लेते हैं। मगर रक्त–मांस, पिंड रूप शरीर पर मरने वाला प्रेमी नहीं हो सकता है। प्रेम तो अविनाशी है, अमृत का सरोवर है, आनन्द का पर्यायवाची है। वह तो ऐसा पथ है, जिसपर कोई बलिदानी वीर ही चल सकता है।
जायसी के 'पद्मावत' में नागमती वियोग खंड में नागमती ने भौंरे और काग के माध्यम से जिस तरह प्रेम का संदेश भेजा है, वह जीवंत तो है ही, लोक काव्य की आत्मा के अधिक निकट भी है :–

'पिउ सौ कहेहुं सँदेसड़ा,
हे भौंरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जल मुई,
तेहिक धुवाँ हम्ह लाग।।' 7

यह सत्य है कि मिलन की अपेक्षा विरह के प्रसंग प्रायः अधिक मार्मिक होते हैं। प्रेम में 'न' का कोई स्थान नहीं होता है, प्रेम पूर्णतः कहीं समर्पण और कही समर्पित होता है। इसमें एक दूसरे का विशवास पलता है। रूकावट हुई तो प्रेम खंडित हो जाता है, उसकी धार सूखने लगती है यानी प्रेम नसा जाता है। भारतेन्दु ने लिखा है –

'रोकहिं जो तो अमंगल होय औ प्रेम नसै जो कहैं प्रिय जाइए।
जे कहैं जाहु न तौ प्रभुता जौं कछु न कहैं तो सनेह नसाइए।।'

यही प्रेम की सार्थकता है। असमंजस की स्थिति बनी रहती है। ऊहापोह में लोग डुबने–उतराने लगते हैं। आँखमिचौनी का खेल चलने लगता है। प्रेम जीवंत हो उठता है। तभी तो धनानंद ने लिखा है–

'मन लेहु पै देहु छटाक नहीं।' इसे ही प्रेम की निशछलता कहते हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने वात्सल्य प्रेम की मार्मिकता आदर्श की धरातल पर किया है। यह कवयित्री की विशेषता है कि उन्होंने पुत्र–पुत्री में कोई भेद न कर मातृ–हृदय की मंदाकिनी अपनी कविता में प्रवाहित कर अमूल्य निधि अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया है –

'यह मेरी गोदी की शोभा
सुख–सुहाग की है लाली
शहीशन भिखारिन की है –
मनोकामना मतवाली।'

महादेवी वर्मा की रचनाओं में समर्पण और विसर्जन का प्रधान स्वर है। विरह की पीड़ा में आनंद की अनुभूति उनका मुख्य जीवन दर्शन है।

'क्या पूजा क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुन्दर मंदिर
मेरा लघुतम जीवन रे
मेरी स्वाँसें करती रहती
नित प्रिय का अभिनन्दन रे।'

इन पंक्तियों में आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना उच्च धरातल पर हुई है। डॉ0 नवलकिशेर प्र0 श्रीवास्तव ने 'भारती' महाकाव्य में माता–पुत्र प्रेम की बहुत ही सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है –
'जननी जन्मभूमि सबसे बढ़कर है,

अरे! स्वर्ग से भी यह अति सुखकर है।
उस–सा होगा कौन अभागा जग में,
भाग चला जो इसे हाय! तजकर।।' 8

इन पंक्तियों में माता–पुत्र का प्रेम आदर्श के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित है।
आस्था प्रेम का आधार स्तंभ है। बिना आस्था के भगवान भी नहीं मिलते। प्रेम अति सूक्ष्म विलक्षण चीज है, जिसमें भावनाएँ तैरती रहती हैं। जिसके कारण भक्त और भगवान एकाकार हो जाते हैं। यही अनासक्त योग है, जो स्वतः प्रस्फुटित होता है। जिसका सुन्दर चित्रण दुखित महतो 'भक्तराज' ने किया है –

'आस्था है प्रतीक प्रेम का, आस्था ही भगवान है,
बिना प्रेम के मिलते नहीं, प्रभु से होते अनजान हैं,

उदात्त प्रेम की गहराई जब हिलोरें मारने लगती है, तब उसमें सात्विक प्रेम की अभिव्यंजना अभिरंजित होने लगती है, जिसके कारण नैसर्गिक प्रेम का बीज स्वतः अंकुरित होने लगता है। अंग्रेज कवि ने लिखा है–

'Loved is like a zipsy child
Who never stay a particular place'.
प्रेम का यह सर्वश्रेष्ठ परिष्कृत रूप है।

नरेन्द्र शर्मा ने लोकधुनों के माध्यम से प्रेम को जीवंत कर दिया है। कहा गया है –'विरहो प्रेम करें।' प्रेम में यही होता है। विरह में प्रेम विकसित होता है। उसमें प्रौढ़ता आती है, और वह अधिक सशक्त हो जाता है। विरह में शक की गुंजाइश होती है, लेकिन प्रेम–चितेरा इसे निर्मूल साबित करता है–

'माघ गया फागुन ढ़िग आया, आ जा पास बटोही!
आन गांव में विलय न जाना, ओ बालम निर्मोही!
मन पर भार विरह का जैसे दीये पर कजरौटा!
एक वर्ष के बाद बटोही, फागुन बन कर लौटा!

यही लौटना प्रेम की पराकष्ठा है। जिसमें अर्थ, धर्म और मोक्ष की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। जिसके कारण प्रेम को कामदेव की संज्ञा दी गयी है।
गोपाल सिंह 'नेपाली' मूलतः प्रेम के कवि हैं। राग के कवि हैं। राग जब नारी के प्रति होता है, श्रृंगार का इनद्रधनुष उगलता है। राग जब देशा की माटी के प्रति होता है, तब राष्ट्रीयता का शषांखनाद होता है। 'नेपाली' ने नारी प्रेम का जो विलक्षण चित्र उकेरा है, उसमें अद्भुत सौंदर्य है –

'क्या होड़ करे चंदा जिसकी सूरत काले धब्बे वाली,
तारों को भला नसीब कहाँ गौरे मुँह पर रक्तिम लाली,
लाली भी इतनी हल्की है रेषामी चदरिया झूठी है,
रग–रग में इतने रंग भरे रंगीन चुनरिया झूठी है।' 9

प्रेम में शषाब्द से षाब्द नहीं जुड़ते हैं। शब्दों के सान्निध्य में नये अर्थ गढता है, जिसमें अर्थों, भावों, ध्वनियों, परम्पराओं की स्नेही छवि अनुगूंजित होती है। जिसके कारण सम्पूर्ण परिवेश प्रेममय हो जाता है।
मैथिलीशारण गुप्त ने सामाजिक समरसता को ध्यान में रखते हुए मानवीय प्रेम को अपने 'भारत भारती' काव्य में उजागर किया है, जो प्रेम का मूल मंत्र है –

''सबके हृदय में सर्वदा समवेदना की दाह हो,
हमको तुम्हारी चाह हो, तुमको हमारी चाह हो।'' 10

यही कारण है कि प्रेम चाहे लौकिक हो या अलौकिक दोनों में सात्विक भाव होता है। इसीलिए प्रेम में सत्यम्, शिावम् सुन्दरम् का भाव निहित होता है। प्रेम का आधार विशवास होता है। तभी तो वेल्टन ने कहा –

"Love is God and God is love." 11

अर्थात् प्रेम ही ईशवर है और ईशवर ही प्रेम है। इसलिए डोरोथी पार्कर ने भी लिखा है –
'प्रेमी वही है, जो प्रेम का मर्म समझता है।' लार्ड बायरन ने प्रेम को 'समर्पण' तथा तादात्मक के रूप में स्थापित करना चाहा है, क्योंकि प्रेम सम्मान का उच्चतम स्तर है –

'Love indeed is light from heaven Aspark of immortal fire'.

मैं काम, वासना और प्रेम की प्रवृत्ति के परिपेक्ष्य में यही कह सकता हूँ कि –

'है अति पावन प्रेम यह जिसमें बसते राम
मानव तो बदनाम है, प्रेम नहीं बदनाम।'

यही बात है कि असीम प्रेम किसी को तोड़ता नहीं, जोड़ता है। तभी तो प्रेम दर्द भी है और दवा भी। जांनिसार अख्तर ने लिखा –

'गरीब जान के हम को न तुम मिटा देना
तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना।' 12

प्रेम रस दुनिया और सृष्टि का मूल श्रोत हैं। इस धुरी पर ही यह समाज टिका हुआ है। प्रेम बड़ी से बड़ी सत्ता को पराजित कर

सकता है। इसके बिना कोई सृजन संभव नहीं है। प्रेम तो धरती का उपहार है। 13
यही कारण है कि मुस्कान प्रेम की भाषा है।
संक्षेप मैं यही कह सकता हूँ कि –

'आंगन में प्रेम बीज बो के देखिए
सब हरा–भरा है, आँख धो के देखिए।
कितने प्यार में पगा है आदमी का मन,
एक बार आप किसी का हो के देखिए।।' 14

यही 'होना' प्रेम है। जिसमें भावनाएँ तैरती हैं। प्रेम में मन और आत्मा का संयोग अपेक्षित है, प्रेम से विमुक्त होकर जिया जा नहीं सकता, क्योंकि प्रेम एक पूजा है। प्रेम की अंतिम परिणति अर्थ, धर्म काम और मोक्ष में होती है। इन चारों पुरूषार्थों के अभाव में प्रेम सुखकर, श्रेयस्कर तथा सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् से युक्त नहीं हो सकता।

संदर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – 7.11 गीता प्रेस, गोरखपुर
2. पंडित रामनरेश त्रिपाठी, 'पथिक' 8वां सं. हिन्दी मंदिर, सुल्तानपुर, पृ.सं.–20, उत्तर प्रदेश
3. जयशांकर प्रसाद 'कामयनी' सं0 2000, अनुपम प्रकाशन, पटना
4. रामधारी सिंह 'दिनकर' – 'उर्वशी' उदयाचल प्रकाशन, नौवां सं0, पटना
5. द्वारिका राय 'सुबोध' – 'प्राणों की बांसुरी' अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, पृ0 सं0 27
6. श्री निवास शर्मा – 'हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि', प्र0सं. प्रकाशान, पूरन सिंह विष्ट, तक्षशिाला प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली
7. मलिक मोहम्मद जायसी –'पद्मावत', अरूण प्रकाशन, आगरा।
8. नवलकिशाोर प्र0 श्रीवास्तव–'भारती', आलोक प्रकाशन, हाजीपुर, वैषााली
9. 'हिमालय', मासिक पत्रिका, जून 1941 पृ.सं. 13
10. मैथिलीशरण गुप्त – 'भारत भारती', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. म्कपजवत ळण्भ्ठमससे दृ शास्वअम ंदक च्वमजतलए व्गवितक च्नइसपबंजपवदए डंल 1923 पृ0 सं0 12
12. निदा फाजली– सं0 जँनिसार अख्तर 'एक जवान मौत', वाणी प्रकाशान नई दिल्ली पृ.सं. 112
13. 'समकालीन भारतीय साहित्य' (पत्रिका) पृ0 181–82 नवम्बर–दिसम्बर 2022
14. डॉ0 भुवनमोहिनी – 'मेरे गीत', कल्पना प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।